हजार वर्ष पहले नया निकला है, उसमें यह ऐसी चीज है नहीं। आहाहा! आहाहा!

सूरज की भाँति प्रकाश — उपयोगस्वरूप प्रकाश आत्मा और अन्धकार समान राग एक साथ क्यों रहे? एकरूप एक साथ क्यों रहे? एकरूप होकर एक साथ क्यों रहे? भिन्नरूप होकर एक समय में एक साथ रह सकते हैं। आहाहा! यह **जड़ और चेतन कभी भी एक नहीं हो सकते,....** राग जड़ और भगवान चैतन्य प्रभु, ये कभी एक नहीं हो सकते। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए तू सर्व प्रकार से प्रसन्न हो,....** आहाहा! यह प्रसन्न हो, प्रसन्न प्रभु! तेरी चीज कभी रागरूप हुई नहीं, राग तुझमें कभी आया नहीं। आहाहा! प्रसन्न हो जा एक बार! आहाहा! अर्थात् राग से भिन्न होकर आनन्द का अनुभव कर। आहाहा! यह प्रसन्न (का अर्थ है)। आहाहा! ऐ प्रसन्नकुमारजी! यह प्रसन्न आया, देखो! आहाहा! प्रभु! तेरा स्वरूप राग से भिन्न है। वह रागरूप हुआ नहीं और तुम रागरूप हुआ नहीं, बस! आहाहा! भेदज्ञान करके प्रसन्न हो जा। आहाहा!

(अपने चित्त को उज्ज्वल करके) सावधान हो, और स्वद्रव्य को ही 'यह मेरा है' इस प्रकार अनुभव कर। मैं तो शुद्धस्वरूपी भगवान हूँ — ऐसा अनुभव कर। आहाहा!

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. ८७ गाथा २३-२५ तथा २६ एवं कलश २३-२४ दिनाङ्क १५-०९-१९७८ शुक्रवार
भाद्र शुक्ल चौदस, वीर निर्वाण संवत् २५०४ उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म

दशलक्षण पर्व, दसवाँ दिन है। (उत्तम) ब्रह्मचर्य, दसवाँ, चारित्र का भेद है यह। पहले तो ब्रह्म अर्थात् आत्मा राग से भिन्न है, उसकी दृष्टि-अनुभव होना, उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन है। ब्रह्म अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु का, राग से भिन्न होकर अनुभव होना, वह तो प्रथम सम्यग्दर्शन भूमिका है; तदुपरान्त स्वरूप में-आनन्द में विशेष रमते-रमते चारित्रदशा प्रगट हुई, उसमें दशवाँ बोल उत्तम ब्रह्मचर्य है, तो वह भी ब्रह्म अर्थात् भगवान आत्मा... आहाहा! उसमें चर्या करना, रमना, लीन होना, उसका नाम दशलक्षण पर्व में अन्तिम ब्रह्मचर्य (धर्म) कहा जाता है।

जो परिहरेदि संगं महिलाणं णेव पस्सदे रूवं।
कामकहादिणियत्तो णवहा बंभं हवे तस्स॥४०३॥

जो मुनि, स्त्रियों की संगति को नहीं करता... आहाहा! अपने स्वरूप के संग में स्त्री का संग नहीं करता और 'नेव पस्सई रूणम' उसका रूप नहीं देखता क्योंकि विषयों में मुख्य चीज तो स्त्री है; अत: उसका संग छोड़ना और उसका रूप नहीं देखना। आहाहा! और 'काम कहादि नियतो' काम की कथा, विषय की कथा, स्मरण आदि और पहले विषय हुआ हो, उसका स्मरण आदि छोड़ना.. आहाहा! आनन्दस्वरूप भगवान का स्मरण करे या काम-भोग कथा का स्मरण करे... आहाहा! जिसको जैसा प्रेम है, उसका स्मरण करता है। आहाहा!

धर्मी को तो अपने ब्रह्मचर्य — आत्मा के प्रति प्रेम और परिणमन है। आहाहा! अत: उसके संग में रहे, पर का संग छोड़ दे — ऐसा नौ प्रकार — मन, वचन, काय, कृत-कारित अनुमोदना से करता है। आहाहा! मन से ब्रह्मचर्य पालन करता है, वाणी से कहता है और काया से उससे (अब्रह्मचर्य से) दूर रहता है। करना, कराना और अनुमोदन... आहाहा! यह अर्थ में लिया है। ब्रह्म अर्थात् आत्मा में लीन होना, वह ब्रह्मचर्य है। आत्मा, परद्रव्य में लीन हो, उसमें स्त्री में लीन होना मुख्य है। परद्रव्य में लीन होने में उसमें स्त्री में लीन होना मुख्य है। आहाहा! तो उसका संग तो होना नहीं, नौ बाड़ ब्रह्मचर्य होता है। समझ में आया?

ब्रह्मचारी की-मुनि की बात है न! तो स्त्री के संग में स्त्री को सिखाना, उसके पास बैठना — यह बात होती नहीं है। समझ में आया? यह भी एक प्रेम और राग है, उसे छोड़ देते हैं। आहाहा!

अपना आनन्द का नाथ, भगवान ब्रह्मानन्द प्रभु, अमृत का सागर, उसके संग में जा न! आहाहा! उस असंग का संग कर न... यह पर का संग क्या है तुझे? आहाहा! ऐसी बात है। इसके बाद विशेष भेद लिए हैं — संगति करना, रूप निरखना, कथा करना, रमण करना, यह सब छोड़ना। पुस्तक नहीं आया?

यहाँ आया है, देखो! २५वीं गाथा चलती है न? क्या कहते हैं? यह जीव अधिकार है, तो भगवान आत्मा उपयोगस्वरूप चैतन्य जीव और रागादि पुद्गल आदि सब अनुपयोग

-जड़; अतः दोनों को भिन्न करके... आहाहा! दोनों कभी एक नहीं हुए। **जड़ और चेतन कभी भी एक नहीं हो सकते।....** अन्तिम दो लाईन है। भगवान ज्ञानस्वरूप आत्मा और रागादि अचेतन अनुपयोग। वह उपयोग और अनुपयोग कभी एक नहीं हो सकते। आहाहा! **इसलिए तूं सर्व प्रकार से प्रसन्न हो,....** आहाहा! क्या कहते हैं? भगवान पूर्णानन्द ज्ञानस्वरूप प्रभु और राग-दोनों एक कभी नहीं होते। आहाहा! अतः अब प्रसन्न हो, आहाहा! राग से भिन्न होकर, अब अपना अनुभव कर, क्योंकि दोनों एक हैं नहीं; दो एक होते नहीं... आहाहा! प्रसन्न हो, प्रभु कहते हैं... आहाहा! ऐ प्रसन्नजी! आहाहा! प्रभु तेरी चीज अन्दर राग के विकल्प से भिन्न पड़ी है न? वह कभी एकत्व नहीं हुई न? आहाहा! एकत्व हुई नहीं तो भिन्न का अनुभव करने में प्रसन्न हो। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया? आनन्दस्वरूप प्रभु, वह रागस्वरूप दुःख-अनुपयोग... यह आनन्द और अनुपयोग कभी एक हुआ ही नहीं। आहाहा!

चाहे तो यह दया, दान का राग हो या यह संसार का कमाना — ऐसा सब पापराग हो। आहाहा! वह सब अनुपयोग जड़ है। भगवान तेरी चीज (आत्मा) उसमें कभी एक हुई नहीं। एक नहीं हुई तो प्रसन्न हो न! आहाहा! ऐसी बातें हैं। **इसलिए तूं सर्व प्रकार से प्रसन्न हो,....** आहाहा! भिन्न है, वह कभी एक नहीं हुई। आहाहा! अतः राग से भिन्न तेरी चीज पड़ी है, एक हुई ही नहीं तो उस पर दृष्टि करके आनन्द का अनुभव कर। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात! आहाहा! एक हुई हो तो तुझे भिन्न करने में कठिनाई पड़े परन्तु एक हुई नहीं न, कहते हैं। आहाहा!

चाहे तो शुभ-अशुभ राग हो; शरीर, वाणी, कर्म तो भिन्न ही है, परन्तु शुभ-अशुभ राग है.... यह भगवान वीतरागस्वरूप उपयोगस्वरूप तो अनुपयोग राग में कभी एकत्व हुआ ही नहीं। आहाहा! यह अनेक सो अनेकरूप रहे हैं। अनेक राग और आत्मा एक ये (दोनों) एकरूप कभी हुए ही नहीं। आहाहा! प्रसन्न हो! गुरु का (आशीर्वाद) देखो! तू प्रसन्नता को जाहिर कर — ऐसा कहते हैं। प्रसन्नता में जाहिर कर, ओहोहो! मैं राग से तो भिन्न रहा हूँ — ऐसा भिन्न का अनुभव कर, प्रसन्न हो, प्रसन्न हो। आहाहा! ऐसी बात है। सर्व प्रकार से प्रसन्न हो। किसी भी प्रकार खेद मत कर। तेरी चीज भिन्न पड़ी है, प्रभु! आहाहा! भिन्न पड़ी है, उसका अनुभव कर न, तो प्रसन्न हो जा न! आहाहा!

इस राग से भिन्न अन्दर प्रभु अनीन्द्रिय... अनीन्द्रिय परन्तु अनन्त आनन्दस्वरूप प्रभु, उसमें इन्द्रियाँ नहीं है। आहाहा! यह चीज जब राग से, विकल्प से — चाहे तो अनन्त काल हुआ परन्तु वह राग का विकल्प और निर्विकल्प प्रभु (आत्मा) एक नहीं हुआ है; अतः प्रसन्न हो न प्रभु! आहाहा! तेरी भिन्न चीज है, वहाँ नजर कर न! अरे! ऐसी बातें हैं! समझ में आया?

(अपने चित्त को उज्ज्वल करके) सावधान हो,.... आहाहा! निर्मल चित्त, निर्मल पर्याय प्रगट करके... आहाहा! सावधान-स्वरूपसन्मुख हो जा। राग और पुण्य की ओर अनादि से, एक नहीं था फिर भी, उस ओर की एकत्वबुद्धि तूने मानी थी। आहाहा! ऐसी चीज बहुत कठिन! व्यापार आदि की क्रिया और उद्योग और यह सब तो जड़ की क्रिया है। आहाहा! उससे तो प्रभु भिन्न है ही परन्तु अपने में कमजोरी से राग और द्वेष के परिणाम दुःखरूप होते हैं; यह आनन्दस्वरूप प्रभु कभी दुःखरूप हुआ ही नहीं। आहाहा! हुआ नहीं तो फिर आनन्द कर न! प्रसन्नता कर न! आहा! स्वरूप में सावधान हो जा न!! आहाहा! ऐसी बातें लोगों को कठिन पड़ती है, ऐसा कि समकित की उत्पत्ति के कारण तो सब ऐसे होते हैं और ऐसे होते हैं। परन्तु यह कारण है। भक्ति करना और पूजा करना और सब करना, इससे समकित की उत्पत्ति होगी — ऐसे सब शिक्षण देते हैं। आहाहा!

मन्दिर बनाना और मन्दिर का दर्शन करना, ये सब सम्यक् का कारण है — ऐसा सिखाते हैं। अरे प्रभु! क्या बात करता है। आहा! भाई? मन्दिर तो ठीक, मन्दिर की ओर का भाव - राग है, वह भी ठीक, वह भी भिन्न, परन्तु अन्दर में विकल्प उठे कि मैं आत्मा और अनन्त गुणरूप... आहाहा! ऐसे विकल्प उत्पन्न हों, उससे भी तो प्रभु तुम कभी एकत्व नहीं हुआ। आहाहा! राग, रागरूप रहा; भगवान शुद्धरूप रह गया यहाँ तो! आहाहा! सावधान हो! आहाहा! गजब बात है! सन्तों की-दिगम्बर सन्तों की वाणी तो देखो! आहाहा! 'समयवर्ते सावधान' (ऐसा) नहीं कहते? लग्न आते हैं तब, लग्न का प्रसंग हो, कन्या का प्रसंग, साढ़े आठ बज गये, समय हो गया, लाओ! 'समयवर्ते सावधान', कन्या को लाओ। यहाँ समयवर्ते सावधान! तेरा समय समयसार आत्मा राग से भिन्न है, सावधान हो जा। आहाहा! आहाहा! ऐसा लोगों को कठिन पड़ता है। व्यवहार साधन से होता है न? व्यवहार साधन वह है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

इस प्रकार अनुभव कर। और स्वद्रव्य को ही 'यह मेरा है'.... मैं तो आनन्द और ज्ञानस्वरूप स्वद्रव्य ही मेरा है; राग आदि तो सब परद्रव्य हैं और स्वद्रव्य तथा परद्रव्य एक कभी हुआ नहीं। सावधान होकर, यह स्वद्रव्य मेरा है — ऐसा अनुभव कर। आहाहा! इन दो लाइन में तो ऐसी बात है। उपादान-निमित्त का झगड़ा (चलता है न)! निमित्त हो तो होता है... निश्चय-व्यवहार का झगड़ा, व्यवहार से निश्चय होता है। अरेरे प्रभु! क्या करता है तू? निमित्त, वह परद्रव्य; उपादान स्वद्रव्य की पर्याय होती है, तब निमित्त हो, परन्तु परद्रव्य से इसमें कुछ होता है — ऐसा नहीं है। इसी प्रकार व्यवहार हो, रागरूप व्यवहार पृथक् हो, परन्तु उससे भगवान आत्मा भिन्न है। राग से तो आत्मा को कुछ लाभ होता है — ऐसा है नहीं। राग से तो नुकसान होता है। आहाहा! समझ में आया?

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में तो यहाँ तक कहा है कि तीर्थंकर गोत्र बाँधे, वह भाव और आहारक शरीर जिस भाव से बँधे, वह (भाव) अपराध है। आहाहा! वह आत्मा नहीं। आहाहा! यह आत्मा प्रभु अन्दर शुद्ध चैतन्यघन है न! आहाहा! उसमें सावधान हो जा और यह स्वद्रव्य मेरा है — ऐसा अनुभव कर। राग को (अपना मानना) छोड़ दे। आहाहा! ऐसी बात है।

श्रोता : समकित प्राप्ति का उपाय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह उपाय यह। बाकी वह सब दूसरा करने को कहते हैं। समकित उत्पत्ति के कारण - व्यवहार डालेंगे। पंचम काल के अन्त तक साधु... बापू! साधु भी कहा साधु, बापू! गम्य क्षेत्र में तो दिखते नहीं। मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखते हैं — अरे प्रभु! किसका विवाद करता है भाई! अभी तो सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं... आहाहा! साधुपना (तो कहाँ रहा)? बापू! प्रभु तेरे हित की बात है, नाथ! अहित के पन्थ में तू हित मान लेगा (तो) दुःख होगा, भाई! आहाहा! उसे अपमान लगे कि हम ऐसा करते हैं और मुनिपना नहीं? बापू! तुझे दुःख किसका? यह राग की क्रिया वह दुःखरूप है, इससे आत्मा का आनन्द प्राप्त हो — ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहाहा! इस प्रकार यह द्रव्य मेरा है। राग भी नहीं, दया, दान, व्रत, विकल्प वह मैं नहीं। आहाहा! यह स्त्री, कुटुम्ब, परिवार तो कोई मेरे हैं नहीं। यह तो परचीज है, इसके कारण आयी है और टिक रही है, परन्तु मुझमें मेरे अपराध से जो विकल्प होता है, वह भी मेरी चीज नहीं है। आहाहा!

भावार्थ : यह अज्ञानी जीव पुद्गलद्रव्य को अपना मानता है;.... यह रागादि, पुण्यादि भाव वह वास्तव में पुद्गलद्रव्य है। आहाहा! **उसे उपदेश देकर सावधान किया है कि जड़ और चेतनद्रव्य दोनों सर्वथा भिन्न-भिन्न हैं,....** राग, शरीर और प्रभु आत्मा अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! आहाहा! धीर का काम है, भाई! चेतनद्रव्य सर्वथा भिन्न है। **कभी भी किसी भी प्रकार से....** कभी भी और किसी भी प्रकार से.... **एकरूप नहीं होते....** आहाहा! राग का विकल्प और प्रभु आत्मा, किसी काल में किसी प्रकार से एक नहीं होते। निश्चय से नहीं परन्तु व्यवहार से तो है या नहीं? ऐसा भी नहीं, यह कहते हैं। आहाहा! **ऐसा सर्वज्ञ भगवान ने देखा है;....** 'सव्वन्हु नाण दिठ्ठो' भगवान ने तो उपयोगरूपी आत्मा सर्वज्ञ ने देखा है और वह अनुपयोग राग (रूप) कैसे हो जाये? भगवान ने तो तेरे आत्मा को राग से भिन्न देखा है। आहाहा! भगवान ने देखा है, वैसा तू देख! आहाहा! मैं ज्ञान, दर्शन, उपयोग (स्वरूप आत्मा), राग से भिन्न हूँ; उपयोग मेरी चीज है। आहाहा! ऐसा भगवान ने देखा है। **इसलिए हे अज्ञानी! तू परद्रव्य को एकरूप मानना छोड़ दे;....** आहाहा! इस व्यवहार के राग से मुझे लाभ होगा (— यह बात) छोड़ दे। आहाहा! समझ में आया? परद्रव्य को एकरूप मानना छोड़ दे। **व्यर्थ की मान्यता से बस कर।** आहाहा! झूठी मान्यता से 'अलम्'। आहाहा! अब श्लोक कहेंगे।

कलश - २३

अब, इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं —

(मालिनी)

अयि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन्
अनुभव भव मूर्त्तेः पार्श्ववर्त्ती मुहूर्तम्।
पृथगथ विलसंतं स्वं समालोक्य येन
त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम्॥२३॥

श्लोकार्थ : [अयि] 'अयि' यह कोमल सम्बोधन का सूचक अव्यय है। आचार्यदेव कोमल सम्बोधन कहते हैं कि हे भाई! तू [कथम् अपि] किसी प्रकार महा कष्ट से अथवा [मृत्वा] मरकर भी [तत्त्वकौतूहली सन्] तत्त्वों का कौतूहली होकर [मूर्तेः मुहूर्तम् पार्श्ववर्ती भव] इस शरीरादि से मूर्त द्रव्य का एक मुहूर्त (दो घड़ी) पड़ौसी होकर [अनुभव] आत्मानुभव कर [अथ येन] कि जिससे [स्वं विलसन्तं] अपने आत्मा के विलासरूप, [पृथक्] सर्व परद्रव्यों से भिन्न [समालोक्य] देखकर [मूर्त्या साकम्] इस शरीरादि मूर्तिक पुद्गलद्रव्य के साथ [एकत्वमोहम्] एकत्व के मोह को [झगिति त्यजसि] शीघ्र ही छोड़ देगा।

भावार्थ : यदि यह आत्मा दो घड़ी पुद्गलद्रव्य से भिन्न अपने शुद्ध स्वरूप का अनुभव करे (उसमें लीन हो), परीषह के आने पर भी डिगे नहीं, तो घातियाकर्म का नाश करके, केवलज्ञान उत्पन्न करके, मोक्ष को प्राप्त हो। आत्मानुभव की ऐसी महिमा है तब मिथ्यात्व का नाश करके सम्यक्दर्शन की प्राप्ति होना तो सुगम है; इसलिए श्रीगुरु ने प्रधानता से यही उपदेश दिया है।

कलश - २३ पर प्रवचन

अयि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन्
अनुभव भव मूर्त्तेः पार्श्ववर्त्ती मुहूर्तम्।
पृथगथ विलसंतं स्वं समालोक्य येन
त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम् ॥२३॥

'अयि' यह कोमल सम्बोधन का सूचक अव्यय है।.... अव्यय — हे भगवान! हे आत्मा! ऐसा। हे भव्य जीव! टीका में तो ऐसा लिया है कि हे मित्र! अयि का अर्थ अध्यात्म में (परमाध्यात्म तरंगिणी) है मित्र! आहाहा! हे भगवान आत्मा! हे मित्र! ऐसा कहकर कहा है। आहाहा! **आचार्यदेव कोमल सम्बोधन कहते हैं कि हे भाई!** आहाहा! **कथम् अपि — किसी प्रकार महा कष्ट से....** चाहे जितनी प्रतिकूलता हो तो भी उसे छोड़कर स्वभाव का अनुभव कर। आहाहा! महापुरुषार्थ से, मरकर भी... आहाहा!

माया को मार डालकर, आहाहा! राग और उदयभाव, वह माया है। वह माया है, वह आत्मा की चीज नहीं है। स्थायी टिकती नहीं, वह तो अस्थिर है। आहाहा! उसको मारकर, भगवान आनन्दस्वरूप से जीवन कर। आहाहा! ऐसा काम है। **तत्त्वों का कौतूहली होकर....** आहाहा! तत्त्वों की विस्मयता को जानकर... आहाहा! राग के समीप अन्दर प्रभु चैतन्य-चिन्तामणि रत्न भगवान पड़ा है। आहाहा! कामधेनु, चिन्तामणि, कल्पवृक्ष, सुरतरु, देव का वृक्ष — ऐसा भगवान आत्मा सुरतरु देवस्वरूप वृक्ष है। आहाहा! ऐसे भगवान को कौतुहली होकर, कौतुहल तो कर, कहते हैं। तुझे बाहर में कौतुहलता लगती है, शरीर जरा सुन्दर दिखे और जरा पैसा मिले और स्त्री जरा रूपवान हो, वहाँ इसे कौतुहल लगता है। आहाहा! यह क्या है? प्रभु! यह तो हड्डियों की फासफूस (चमक) है। श्मशान में हड्डियाँ होती हैं न? और उनमें चमक होती है न, अग्नि। फोसफरस... लड़के ऐसा कहते हैं कि वहाँ व्यन्तर है व्यन्तर, वहाँ नहीं जाना। व्यन्तर कहाँ होता है? हड्डियाँ ऐसी पड़ी हों, उसमें चमक होती है। इसी प्रकार यह जगत की चमक बाहर की है, श्मशान की हड्डियों की चमक की तरह यह शरीर, वाणी, पैसा, मकान, बाह्य (चीजें हैं)। आहाहा! प्रभु कहते हैं, उनकी कौतुहलता प्रभु! एक बार छोड़ और अन्दर की कौतुहलता कर। आहाहा!

यह किसे पड़ी है? इस राग के पर्दे में क्या चीज है यह? आहाहा! प्रभु इतनी-इतनी महिमा करते हैं तीन लोक के नाथ आत्मा की महिमा करे — तू देवादिदेव, तू सिद्धरूप, परम अमृत का पिण्ड, आहाहा! अनन्त गुण का धाम, शक्ति का संग्रह, आहाहा! क्या है यह तो! ऐसे एक बार कौतुहल तो कर! अर्थात्? अन्तर अवलोकन करने के लिए प्रयत्न तो कर! — ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कौतुहल का अर्थ यह किया। आहाहा! तेरी ज्ञान की पर्याय पर को देखती है तो उस पर्याय को एक बार कौतुहल तो कर कि यह आत्मा क्या है — ऐसा अवलोकन तो कर! आहाहा! अपनी ज्ञानपर्याय में स्वरूप का अवलोकन - कौतुहल तो कर कि यह क्या है? एक बार अवलोकन तो कर! आहाहा! ऐसी बातें हैं।

'भवमूर्तेः मुहूर्तम् पार्श्ववर्ती' इस शरीरादि से मूर्त द्रव्य का एक मुहूर्त (दो घड़ी) पड़ौसी हो जा.... जैसे पड़ोसी है तो उसका मकान दूसरा, तेरा मकान दूसरा। आहाहा! एक बार दो घड़ी मूर्त रागादि पदार्थ से... आहाहा! आहाहा! पड़ोसी की चीज

देखकर ऐसा माने कि यह मेरी चीज है? आहाहा! यह पड़ोसी होकर अनुभव कर। आहाहा! राग का, पुण्य का, शरीर का पड़ोसी होकर; भगवान उससे भिन्न है — ऐसा अन्तर अनुभव कर। आहाहा! **कि जिससे 'स्वं विलसन्तं' अपने आत्मा के विलासरूप,....** आहाहा! भगवान आत्मा का स्वविलास, आहाहा! अन्दर बड़ा बाग पड़ा है। वहाँ जा और उसकी सुगन्ध ले। उस ओर जाकर आत्मा का विलास कर। आहाहा! **अपने आत्मा के विलासरूप 'पृथक्' सर्व परद्रव्यों से भिन्न....** आहाहाहा!

'समालोक्य' देखकर 'मूर्त्या साकम्' इस शरीरादि मूर्तिक पुद्गलद्रव्य के साथ.... आहाहा! रागादि मूर्तिक पुद्गलद्रव्य के साथ **'एकत्वमोहम्' एकत्व के मोह को 'झगिति त्यजसि'....** प्रभु! तू **शीघ्र ही छोड़ देगा।** आहाहाहा! गजब बात! यह विधि है भाई! आहाहा! यह पहले तो सुनने को मिले नहीं, उसे समझने को नहीं मिले... अरे! आहाहा! दीन होकर मृत्यु करके चला जाता है। आहाहा! चौरासी के अवतार में कहीं! एक बार प्रभु ऐसा कर न कि... आहाहा!

भाई! तेरी चीज राग से भिन्न पड़ी है न प्रभु? भिन्न है, उसका सावधान होकर अनुभव कर। आहाहा! तो **झगिति त्यजसि....** राग की एकता का मोह तत्काल छूट जायेगा। आहाहा! समझ में आया? उसी क्षण छूट जायेगा। आहाहा! भगवान ज्ञायकस्वरूप प्रभु का राग से भिन्न अनुभव कर तो तेरी राग की एकतारूपी मोह **'झगिति'** उसी क्षण छूट जायेगा। आहाहा! और वस्तु का स्वरूप ग्रहण हो जायेगा — ऐसी बातें हैं। आहाहा!

'एकत्वमोहम् झगिति त्यजसि'.... भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, उपयोगस्वरूप, रागादि अनुपयोग से भिन्न पड़ा है और वे दो कभी एक हुए ही नहीं तो उसकी दृष्टि कर, उस ओर सावधान हो, उसका अवलोकन करने की कौतुहलता तो कर! आहाहा! तो उसी क्षण 'एकत्वमोहम्' — राग का एकत्वरूपी मिथ्यात्वभाव... जिनबिम्ब के दर्शन से — ऐसा होता है लो, पाठ ऐसा है। पाठ है वह जिनबिम्ब यह, केवली की स्तुति कहा न? इस केवली की स्तुति करे, सच्ची स्तुति; केवली की स्तुति अर्थात् इस आत्मा की स्तुति। अनन्त आनन्दकन्द प्रभु आत्मा के गुण ग्राम का सत्कार स्वभाव का हो, त्रिकाल स्वभाव का सत्कार-स्वीकार हो, वह केवली की स्तुति है। आहाहा!

धवल में यह आता है — जिनबिम्ब के दर्शन से निद्धत और निकाचित् कर्म का नाश होता है — ऐसा पाठ आता है। भाई! परन्तु किसे? जिनबिम्ब के दर्शन तो अनन्त बार किये। आहाहा! और स्वर्ग में तो असंख्य जिनबिम्ब विराजमान हैं; स्वर्ग में — भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी, और वैमानिक में असंख्य प्रतिमाएँ-जिनप्रतिमाएँ शाश्वत् हैं, वहाँ अनन्त बार उत्पन्न हुआ है। आहाहा! और उत्पन्न होते ही प्रथम उन जिनबिम्ब के दर्शन करने जाता है — ऐसा शास्त्र में लेख है परन्तु वह तो शुभभाव है। वह जिनबिम्ब नहीं; यह जिनबिम्ब प्रभु, वीतरागस्वभाव से ठसाठस भरा हुआ जिनबिम्ब यह (आत्मा) है। आहाहा! उसका अनुभव कर, उसका अवलोकन कर, उसका दर्शन कर, उसकी प्रतीति कर, उसका ज्ञान करके विश्वास कर। आहाहा! ऐसी कठिन बातें! **शीघ्र ही छोड़ देगा।... झगिति** का अर्थ शीघ्र किया। **त्यजसि** का अर्थ छोड़ देगा (किया है।) आहाहा!

भावार्थ : यदि यह आत्मा दो घड़ी पुद्गलद्रव्य से भिन्न अपने शुद्धस्वरूप का अनुभव करे.... यह सम्यग्दर्शन पाने की कला! यह बात है भाई! आहाहा! शास्त्र में आता है, देवदर्शन-देव की ऋद्धि बड़ी हो, उसे देखना-उससे समकित पाता है, यह तो निमित्त का कथन है। आहाहा! ऐसा तो अनन्त बार हुआ, तो भी करे, तब उसे निमित्तरूप से कहा जाता है। आहाहा! नन्दीश्वर द्वीप (में) भगवान बावन जिनालय १०८-१०८ रत्न की शाश्वत् प्रतिमा हैं। देव महोत्सव करने वहाँ हमेशा जाते हैं — कार्तिक शुक्ल अष्टमी से पूर्णिमा, फाल्गुन शुक्ल अष्टमी से पूर्णिमा, आषाढ़ शुक्ल अष्टमी से पूर्णिमा - तीन बार — ऐसा तो अनन्त बार किया है। आहाहा! वह तो शुभभाव है, पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा!

यह भगवान जिनबिम्ब प्रभु (निजात्मा), आहाहा! इसके दर्शन और अवलोकन करने से मिथ्यात्व का क्षण में नाश हो जायेगा। आहाहा! प्रकाश हुआ, वहाँ अन्धकार नहीं रह सकता। आहाहा! तेरी भ्रान्ति नाश हो जायेगी। भगवान का दर्शन करने से भ्रान्ति का नाश हो जायेगा। यह (निज) भगवान, हों! यह लोग विवाद उठाते हैं बाहर के... सब शास्त्र में ऐसा आता है देव की ऋद्धि देखने से, आहाहा! वेदना से आता है लो न? नारकी की महा तीव्र वेदना से समकित पाता है परन्तु वेदना तो अनन्त बार हुई है, क्यों प्राप्त नहीं हुआ? यह तो जिसे वह पाने में अन्दर जाता है, उसका लक्ष्य ऐसा अन्दर जाता है।

आहाहा! यह ? अरेरे! यह दुःख यह ? ऐसा लक्ष्य होता है, वह लक्ष्य बदल डालता है, तब वेदना से हुआ — ऐसा कहा जाता है। आहाहा! उसकी पीड़ा, बापू! नरक की पीड़ा! दस हजार वर्ष की स्थिति पहले नरक में-जघन्य स्थिति दस हजार, उत्कृष्ट स्थिति एक सागर, पहली नरक में; ऐसे जाये सातवें नरक में तैंतीस सागर! आहाहा! हजारों बिच्छु, ठाकरिया कड़क बिच्छु होता है न, वह ऐसे काटे, उससे भी अनन्तगुनी पीड़ा वहाँ है, भाई! तू वहाँ अनन्त बार रहा है प्रभु! आहाहा! इसलिए शास्त्र में तो ऐसा आता है कि वेदना से भी पाता है। परन्तु कौन ? उस वेदना का लक्ष्य किया कि अरेरे यह ? मैं कौन हूँ ? इस प्रकार जो आत्मा में गया, उसे वेदना से किया - ऐसा निमित्त से हुआ — ऐसा कहा जाता है। आहाहा! ऐसी वेदना तो प्रभु! अनन्त बार सहन की है भाई! आहाहा! मनुष्यरूप से भी वेदना का पार नहीं है। आहाहा! कीड़े पड़ें, हाँ! आहाहा!

एक बार कहा था न ? लाठी की एक लड़की थी, अठारह वर्ष की छोटी उम्र, दो वर्ष का विवाह, उसमें शीतला निकली। शीतला क्या कहलाती है यह ?

श्रोता : चेचक।

पूज्य गुरुदेवश्री : चेचक; उसमें एक-एक दाने में एक-एक कीड़ा, कीड़ा। आहाहा! बिस्तर पर सोये परन्तु आहाहा! रोवे... रोवे... रोवे... अठारह वर्ष की जवान लड़की, (बोले) माँ! मैंने ऐसे पाप इस भव में नहीं किये, मुझसे सहन नहीं किया जाता, नहीं रहा जा सकता, क्या करूँ ? आहाहा! वह ऐसी की ऐसी मर गयी। लाठी। आहाहा! ऐसा तो प्रभु अनन्त बार... यह तो साधारण है परन्तु जीवित राजकुमार का विवाह हो आज का, जिसमें करोड़ों-अरबों रुपये खर्च किये हों, वह जवान पच्चीस वर्ष का जवान, उसे टाटा की अग्नि की जीवित डाले। टाटा की अग्नि है न ? जमशेदपुर देखा है न ? आहाहा! हम वहाँ गये थे, जमशेदपुर-भाई! वहाँ रहते थे न नरभेरामभाई, देखने गये थे, वहाँ बड़ा लोहे का बनता है, वहाँ अग्नि - अग्नि भड़...भड...भड़ उस जवान राजकुमार का विवाह आज का और अरबों रुपये का खर्च, उसे जीवित अग्नि में डाले, उस पीड़ा से अनन्तगुनी पीड़ा नरक में है प्रभु! आहाहा! आहाहा! ऐसी पीड़ा प्रभु! तूने अनन्त बार सहन की है। एक बार अब तेरे आनन्द को देख न अब! आहाहा!

है ? **अपने शुद्ध स्वरूप का अनुभव करे (उसमें लीन हो), परीषह के आने पर भी डिगे नहीं,....** आहाहा ! **तो घातियाकर्म का नाश करके, केवलज्ञान उत्पन्न करके, मोक्ष को प्राप्त हो ।....** आहाहा ! ऐसी स्थिति में तो अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान होता है, कहते हैं। ऐसी तेरी ताकत है। आहाहा ! **आत्मानुभव की ऐसी महिमा है, तब मिथ्यात्व का नाश करके....** आहाहा ! अतीन्द्रिय आनन्द में लीन... लीन... लीन... लीन... लीन... होते-होते जहाँ केवलज्ञान प्राप्त करते हैं, वहाँ मिथ्यात्व का नाश करना तो साधारण बात है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! है ? **तब मिथ्यात्व का नाश करके सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होना तो सुगम है;....** आहाहा ! आनन्द के नाथ में सम्यग्दर्शनपूर्वक जहाँ अन्दर में रमते हैं, अन्दर जमावट जाती है। आहाहा ! जम जाये जहाँ आनन्द में; केवलज्ञान हो जाता है, तो एक क्षण में स्वरूप की ओर का अनुभव करके मिथ्यात्व का नाश करना तो सुगम है — ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? है ? **तब मिथ्यात्व का नाश करके सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होना तो सुगम है; इसलिए श्रीगुरु ने प्रधानता से यही उपदेश दिया है।** मुख्यरूप से यह उपदेश दिया है। आहाहा !

श्रोता : यहाँ सुगम कहा, कहीं कठिन कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा ! यह कठिन तो अपेक्षा से कहा है। बोधिदुर्लभ भावना ! दूसरा अनन्त बार मिला और यह मिला नहीं। इस अपेक्षा से दुर्लभ कहते हैं। आहा !

श्रोता : दोनों में से सत्य क्या है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों सत्य हैं।

श्रोता : सुलभ भी सच्चा और दुर्लभ भी सच्चा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा था न, हम तो कहते थे न, सम्प्रदाय में, हजारों लोग तब एकत्रित हुए थे न ! अस्सी के साल, कितने वर्ष हुए ? ५४ वर्ष। बोटाद में चातुर्मास था, हजारों लोग आवें, साढ़े तीन सौ घर.... व्याख्यान चले तब 'कानजीस्वामी पढ़ने बैठे हैं' इसलिए हजारों लोग पार नहीं, ५५ वर्ष पहले। एक बार ऐसा कहा था — उसमें से श्वेताम्बर में उत्तराध्ययन है, उसमें एक ब्राह्मण के छह पुत्रों की कथा है, फिर वे लड़के वैराग्य प्राप्त करते हैं। फिर माता के समीप जाकर आज्ञा माँगते हैं, माता से वे लड़के कहते

हैं, यह गाथा जब व्याख्यान में चलती थी तब लोग ऐसे... ५५ वर्ष पहले। 'अजेय धम्मम् परिवज्जयामो जहीं पवन नाम पुनः भवामो' — हे माता! मैं आत्मा के आनन्द की उग्र दीक्षा लेने के लिए आज ही अंगीकार करूँगा, 'अजेय धम्म परिवज्जयामो' — माता! आनन्द के नाथ को प्रगट करने के लिए हम वन में चले जायेंगे; हमें यहाँ कहीं चैन नहीं पड़ती। 'अजेय धम्मम् परिवज्जयामो जहीं पवन नाम पुनः भवामो' — माता! जननी! कोलकरार करते हैं माँ! फिर से अब हम माता नहीं करेंगे। माँ! फिर से अवतार नहीं करेंगे अब। आहाहा!

उस समय बोटाद में बहुत बड़ी सभा थी। सेठ बैठे हों - पचास-पचास हजार की आमदनीवाले, सुनते, पहले से ऐसी शैली हैं न यहाँ तो, आहाहा! 'अजेय धम्मम् परिवज्जयामो' हम आज ही आनन्द के स्वरूप का चारित्र अंगीकार करना चाहते हैं, 'जही पवनाम पुनःभवामो' माता! जिसे अंगीकार करने पर दूसरी माता और दूसरा भव न करने की हमारे प्रतिज्ञा है। 'अनागयं ऐवअतिकिंची' तीसरा पद — माता! 'अणागंय ऐवअतिकिंची' अनन्त काल में कौन सी चीज अप्राप्त रह गयी है? 'अणागयं निरअति किंची' माता! गत काल में — भूतकाल में कौन सी चीज बाकी रह गयी है कि जो प्राप्त न हुई हो। अनन्त काल में अनन्त बार स्वर्ग मिला, अनन्त बार सेठाई मिली, 'अणागयमेव अतिहिंची, श्रद्धाकम्म मे।' माता! श्रद्धा करो 'विनय तु रागम्' माँ! अब हमारे प्रति राग छोड़ दे। आहाहा! हम वन में अकेले चले जायेंगे। आहाहा! जहाँ हमारा कोई नहीं है, आहाहा! बाहर में, आहाहा! उस वन में बाघ की दहाड़ पड़ती हो - सिंह की, हम तो वहाँ आनन्द में झूलेंगे। आहाहा! 'एकाकी विचरूँगा फिर श्मशान में' आहाहा! यह तो वह दशा प्राप्त करना सरल तो फिर समकित प्राप्त करना तुझे मुश्किल कैसे है? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यह यहाँ कहा — **श्रीगुरु ने प्रधानता से यही उपदेश दिया है।** आहाहा! समकित प्राप्त करने का (उपदेश दिया है)। आहाहा! यह लोग इस प्रकार कहते हैं — बाहर से ऐसा होता है और ऐसा होता है, गुरु का विनय करे और गुरु की भक्ति करे.... हो, परन्तु वह राग है, वह तो आता है, राग होता है, परन्तु उससे कोई आत्मा का सम्यग्दर्शन

प्राप्त करता है — यह चीज नहीं है, प्रभु! आहाहा! वैसे तो ऐसा कहे 'विनय मोक्ष का द्वार है' विनय मोक्ष का द्वार, परन्तु कौन-सी विनय? आहाहा! अपने अनन्त आनन्द के नाथ की विनय, उसका सत्कार - स्वीकार करना, वह विनय। भगवान की विनय तो आवे, प्रभु! परन्तु वह शुभराग है। आहाहा! आज दशवाँ दिन है, दशलक्षण पर्व है न? आहाहा! ऐसे दशलक्षण पर्व भी अनन्त बार गये प्रभु! तेरे ऊपर। आहाहा! अनन्त-अनन्त भव में... आहाहा! जैन सम्प्रदाय में, दिगम्बर सम्प्रदाय में भी अनन्त बार जन्म हुआ और अनन्त ऐसा हुआ परन्तु तूने आत्मा अन्दर में क्या चीज है, यह जानने का कौतुहल नहीं किया। आहाहा!

गाथा २६

अथाहाप्रतिबुद्धः–

जदि जीवो ण सरीरं तित्थयरायरियसंथुदी चेव।
सव्वा वि हवदि मिच्छा तेण दु आदा हवदि देहो।।२६।।

यदि जीवो न शरीरं तीर्थकराचार्यसंस्तुतिश्चैव।
सर्वापि भवति मिथ्या तेन तु आत्मा भवति देहः।।

यदि य एवात्मा तदेव शरीरं पुद्गलद्रव्यं न भवेत्तदा –

(शार्दूलविक्रीड़ित)

कांत्यैव स्नपयंति ये दशदिशो धाम्ना निरुंधंति ये
धामोद्दाममहस्विनां जनमनो मुष्णंति रूपेण ये।
दिव्येन ध्वनिना सुखं श्रवणयोः साक्षात्क्षरंतोऽमृतं
वंद्यास्तेऽष्टसहस्रलक्षणधरास्तीर्थेश्वराः सूरयः।।२४।।

– इत्यादिका तीर्थकराचार्यस्तुतिः समस्तापि मिथ्या स्यात्। ततो य एवात्मा तदेव शरीरं पुद्गलद्रव्यमिति ममैकान्तिकी प्रतिपत्तिः।

अब, अप्रतिबुद्ध जीव कहता है उसकी गाथा कहते हैं —

जो जीव होय न देह तो, आचार्य वा तीर्थेश की।
मिथ्या बने स्तवना सभी, सो एकता जीवदेह की!॥२६॥

गाथार्थ : अप्रतिबुद्ध जीव कहता है कि — [यदि] यदि [जीवः] जीव [शरीरं न] शरीर नहीं है तो [तीर्थकराचार्यस्तुतिः] तीर्थंकरों और आचार्यों की जो

स्तुति की गयी है वह [सर्वा अपि] सभी [मिथ्या भवति] मिथ्या है; [तेन तु] इसलिए हम (समझते हैं कि) [आत्मा] जो आत्मा है वह [देहः च एव] देह ही [भवति] है।

टीका : जो आत्मा है वही पुद्गलद्रव्यस्वरूप यह शरीर है। यदि ऐसा न हो तो तीर्थंकरों और आचार्यों की जो स्तुति की गयी है, वह सब मिथ्या सिद्ध होगी।

श्लोकार्थ : [ते तीर्थेश्वराः सूरयः वन्द्याः] वे तीर्थंकर और आचार्य वन्दनीय हैं। कैसे हैं वे ? [ये कान्त्या एव दशदिशः स्नपयन्ति] अपने शरीर की कांति से दसों दिशाओं को धोते हैं — निर्मल करते हैं, [ये धाम्ना उद्दाम-महस्विनां धाम निरुन्धन्ति] अपने तेज से उत्कृष्ट तेजवाले सूर्यादि के तेज को ढक देते हैं, [ये रूपेण जनमनः मुष्णन्ति] अपने रूप से लोगों के मन को हर लेते हैं, [दिव्येन ध्वनिना श्रवणयोः साक्षात् सुखं अमृतं क्षरन्तः] दिव्यध्वनि से (भव्यों के) कानों में साक्षात् सुखामृत बरसाते हैं और वे [अष्टसहस्त्रलक्षणधराः] एक हजार आठ लक्षणों के धारक हैं।

— इत्यादिरूप से तीर्थंकरों-आचार्यों की जो स्तुति है वह सब ही मिथ्या सिद्ध होती है। इसलिए हमारा तो यही एकान्त निश्चय है कि जो आत्मा है वही शरीर है, पुद्गलद्रव्य है। इस प्रकार अप्रतिबुद्ध ने कहा।

गाथा - २६ एवं कलश-२४ पर प्रवचन

अब, अप्रतिबुद्ध जीव कहता है उसकी गाथा.... जब बहुत जोर दिया कि राग और शरीर आत्मा का है ही नहीं, तब अप्रतिबुद्ध (जीव पूछता है।) आहाहा! आहाहा! महाराज! तुम इतना अधिक जोर देते हो तो हम कहते हैं शास्त्र की बात, सुनो।

जदि जीवो ण सरीरं तित्थयरायरियसंथुदी चेव।
सव्वा वि हवदि मिच्छा तेण दु आदा हवदि देहो।।२६।।

जो जीव होय न देह तो, आचार्य वा तीर्थेश की।
मिथ्या बने स्तवना सभी, सो एकता जीवदेह की!॥२६॥

आहाहा! शिष्य ने शास्त्र में से प्रश्न उठाया है कि तुम भगवान के देह की तो स्तुति करते हो, तो देह और आत्मा एक न हो तो ऐसी स्तुति क्यों करते हो — ऐसा अज्ञानी का प्रश्न है। आहाहा!

टीका : जो आत्मा है, वही पुद्गलद्रव्यस्वरूप यह शरीर है। यदि ऐसा न हो.... यह पुद्गलद्रव्यस्वरूप शरीर है.... आत्मा है, वही पुद्गलद्रव्यस्वरूप शरीर है — ऐसा कहते हैं। आत्मा जो है, यह पुद्गलद्रव्य शरीर है, वही आत्मा है। यदि ऐसा न हो तो हम प्रश्न करते हैं **(यदि ऐसा न हो तो) तीर्थंकरों और आचार्यों की जो स्तुति की गयी है,....** तीर्थंकर के शरीर की स्तुति की गयी है तो **वह सब मिथ्या सिद्ध होगी।** समझ में आया? सब मिथ्या सिद्ध होगी। आहाहा!

कांत्यैव स्नपयंति ये दशदिशो धाम्ना निरुंधंति ये
धामोद्दाममहस्विनां जनमनो मुष्णंति रूपेण ये।
दिव्येन ध्वनिना सुखं श्रवणयोः साक्षात्क्षरंतोऽमृतं
वंद्यास्तेऽष्टसहस्रलक्षणधरास्तीर्थेश्वराः सूरयः।।२४।।

आहाहा! शिष्य प्रश्न करता है कि तुम तो शरीर से आत्मा भिन्न... भिन्न और आत्मा, वह शरीर नहीं। तो हम तो कहते हैं — शास्त्र में तो तीर्थंकर के शरीर की स्तुति चली है, शरीर की स्तुति की तो वह आत्मा की स्तुति हुई।

श्रोता : वरना करते किसलिए हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : वरना करते किसलिए हो? आहाहा!

'ते तीर्थेश्वराः सूरयः वन्द्याः' वे तीर्थंकर और आचार्य वन्दनीय हैं। कैसे हैं? अपने शरीर की कांति से दसों दिशाओं को धोते हैं.... आहाहा! उन तीर्थंकर का शरीर कान्तिमान दशों दिशाओं को धोता है — ऐसा प्रकाश... प्रकाश... प्रकाश पड़ता है। अन्धकार ऐसे उलट जाता है। आहाहा! ऐसा, प्रभु का-किसका गुणगान करते हो तुम? यह शरीर का गुणगान है! आत्मा, शरीर है तो आप गुणगान करते हैं ऐसा? शरीर की कान्ति से दसों दिशाओं को धोते हैं। **निर्मल करते हैं...** भगवान के शरीर की कान्ति परमोदारिक है — ऐसी कान्ति कि सूर्य के तेज के समक्ष जिसका तेज छा जाता है — आप क्या महिमा

करते हो ? शरीर की या आत्मा की ? तीर्थंकर के शरीर की स्तुति हुई, वह तीर्थंकर की स्तुति हुई — ऐसा है नहीं। सुन तो सही ! आहाहा !

'कान्त्या एव दशदिशः स्नपयन्ति' अपने शरीर की कांति से दसों दिशाओं को धोते हैं 'ये धाम्ना उद्दाम-महस्विनां धाम निरुन्धन्ति' अपने तेज से उत्कृष्ट तेजवाले सूर्यादि के तेज को (ढक देते हैं,....) आहाहा ! जिनके शरीर की कान्ति के तेज के समक्ष सूर्य का तेज हीन पड़ जाता है। समझ में आया ? **'ये रूपेण जनमनः मुष्णन्ति' अपने रूप से लोगों के मन को हर लेते हैं,....** भगवान का इतना रूप है, शरीर का... आहाहा ! अपने रूप से लोगों के मन को हर लेते हैं। **'दिव्येन ध्वनिना श्रवणयोः साक्षात् सुखं अमृतं क्षरन्तः'** आहाहा ! दिव्यध्वनि ! लो, आया दिव्यध्वनि तो जड़ है। हम स्तुति तो करते हैं। समझ में आया ? **दिव्यध्वनि से (भव्यों के) कानों में साक्षात् सुखामृत बरसाते हैं....** आहाहा ! भगवान की दिव्यध्वनि, इन्द्र और नरेन्द्र बैठे हों, मानो साक्षात् अमृत झरता हो — ऐसा लगता है। आहाहा ! जिसमें सिंह और बिल्ली, बिल्ली और चूहा एक साथ बैठे हों, बिल्ली को बैर नहीं उछलता, उस वाणी का तो आप इतना गुणगान करते हो, वाणी तो जड़ है। जड़ का गुणगान करते हो तो तीर्थंकर की स्तुति हो गयी, शरीर की स्तुति से (तीर्थंकर की स्तुति हो गयी)। अरे ! सुन तो सही, भाई ! **कानों में साक्षात् सुखामृत बरसाते हैं और वे एक हजार आठ लक्षणों के धारक हैं।** लो ! भगवान के शरीर में एक हजार आठ लक्षण होते हैं। पैर में, हाथ में हाथी का, कल्पवृक्ष का ऐसा चिह्न होता है, यह सब तो आपने शरीर का गुणगान किया; इसमें आत्मा की महिमा क्या है ? आत्मा, वह शरीर है; इसलिए आपने शरीर का गुणगान किया है। यह तो आत्मा के.... **इत्यादिरूप से जो तीर्थंकर-आचार्यों की स्तुति है मिथ्या सिद्ध होती है।....** यदि आप ऐसी स्तुति करते हो और कहते हों कि यह शरीर, आत्मा नहीं है तो वह मिथ्या स्तुति होगी (ऐसा) शिष्य का प्रश्न है। **इसलिए हमारा तो यही एकान्त निश्चय है कि जो आत्मा है वही शरीर है,....** आहाहा ! यह **पुद्गलद्रव्य है। इस प्रकार अप्रतिबुद्ध ने कहा।** इसका उत्तर देंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)